खेलकूद और रसायनों का दुरुपयोग

पी. बालाराम

हम रसायन वर्ष मना रहे हैं। यह वर्ष रसायन शास्त्र की समृद्धता और उपयोगिता का जश्न है। रसायन तो हमारे चारों ओर हैं, आप इनसे बच नहीं सकते। जीव विज्ञान की जड़ें रसायन शास्त्र में गहराई में जमी हुई हैं। डीएनए की दोहरी कुंडली के खुलासे ने आणविक जीव विज्ञान को जन्म देने के साथ ही आनुवंशिकता की रासायनिक बुनियाद को भलीभांति स्थापित कर दिया।

जीव विज्ञान में आधुनिक सोच की बुनियाद यानी प्राकृतिक चयन अणुओं और उनके कार्यों के स्तर पर काम करता है। ये अणु सजीवों के अंदर चल रही जैव-रासायनिक क्रियाओं का निर्धारण करते हैं।

पदार्थ विज्ञान का फलता-फूलता क्षेत्र भी रसायन की बुनियाद पर खड़ा है। हमारे जीवन को बदल देने का वायदा करने वाली नैनोटेक्नॉलॉजी भी काफी हद तक पारंपरिक रसायन शास्त्र पर निर्भर है। यहां तक कि जो भौतिक शास्त्री और इंजीनियर्स जीव विज्ञान के क्षेत्र में कदम रख रहे हैं, वे भी स्वीकार करते हैं कि रसायन शास्त्र को नज़रअंदाज़ करना नामुमकिन है।

रसायनों को प्रायः हानिकारक माना जाता है; प्रदूषक पदार्थ और ज़हर इनमें शामिल हैं। अखबारों में एण्डोसल्फान की कहानियां छाई हुई हैं। यह एक कीटनाशक है, जो भारत में काफी बदनाम हुआ है। यही बात उन डायऑक्सिन्स पर भी लागू होती है जो सर्वव्यापी प्लास्टिक बोतलों में से रिसते रहते हैं। रसायन शास्त्र की लोक-छवि बनने में यह बात भी बाधक होती है कि रसायनविद प्रायः संरचना सूत्रों की भाषा में बात करते हैं जो एक सामान्य व्यक्ति की समझ से परे होती है।

अलबत्ता, रसायन जीवन की कुंजी हैं और आम लोगों में रसायन शास्त्र की मोटी-मोटी समझ नीति निर्माण के लिहाज़ से भी शायद उपयोगी होगी।

इस संदर्भ में एक मुद्दा खेलकूद में ऐसी दवाइयों के उपयोग का है जो कथित रूप से बेहतर प्रदर्शन में मदद करती हैं। एक बार फिर रसायन शास्त्र इसमें शामिल है।

भारतीय एथलीट्स के सम्बंध में अखबारी खबरों से पता चलता है कि कई को तो पता तक नहीं है कि वे किन दवाइयों का सेवन कर रहे हैं। अधिकांश एथलीट्स का ख्याल था कि ये दवाइयां पोषण पूरक हैं। शक की सुई प्रशिक्षकों की ओर इशारा कर रही थी, जो अधिकांशतः उन देशों के थे जो पूर्व सोवियत संघ के हिस्से थे। जो आक्रोश व्यक्त किया गया और त्वरित व सख्त सज़ा की जो मांगें की गईं, वे प्रायः पाखंडनुमा लगीं क्योंकि ये उन लोगों ने उठाई थीं जो खेलकूद संस्थाओं के कर्ता-धर्ता हैं।

तथ्य यह है कि प्रदर्शनवर्धक दवाइयों का सेवन यानी 'डोपिंग' अंतर्राष्ट्रीय खेलकूद में सामान्य बात है। इससे यही समझ में आता है कि भारतीय एथलीट्स का इससे संपर्क अपेक्षाकृत देर से हुआ है। दरअसल डोपिंग वह क्षेत्र है जहां विज्ञान और खेलकूद खुलकर साथ-साथ नज़र आते हैं।

यह सही है कि विज्ञान और वैज्ञानिक विधियां खेलकूद में प्रदर्शन को बेहतर बनाने में मदद दे सकते हैं, मगर अधिकांश ध्यान उन *पदार्थों* पर केंद्रित किया जाता है जो शारीरिक प्रदर्शन को बढ़ावा देते हैं। बेजिंग में आयोजित 2008 के ओलंपिक की पूर्व संध्या पर साइन्स पत्रिका ने सवाल किया था: "न्यूरोइमेजिंग, हाईटेक सामग्री, दमा की नई दवाइयां, दवाइयों का सेवन छिपाने की तकनीकें, तापमान नियमन वगैरह क्या बेजिंग के 2008 ओलंपिक में एथलीट्स को शक्तिशाली बनाएंगे?" इसमें कोई शक नहीं कि यही सवाल अगले साल लंदन ओलंपिक्स के समय भी दोहराया जाएगा।

डोपिंग की चर्चा करते हुए साइन्स के उक्त आलेख में कहा गया था, "आधुनिक चिकित्सा के सख्त मानकों के

आधार पर इस बात के पुख्ता प्रमाण बहुत कम हैं कि विश्व डोपिंग निषेध एजेंसी (डब्लू.ए.डी.ए.) की सूची में शामिल दर्जनों पदार्थ वास्तव में कारगर हैं।" एम्फीटेमिन्स और एनाबोलिक स्टीरॉइड्स जैसे चंद अपवादों को छोड़ दें तो इन पदार्थों के सावधानीपूर्वक, प्लेसिबो के साथ बहुत कम परीक्षण किए गए हैं। जहां एम्फीटेमिन्स 'अल्प समय की विस्फोटक गतिविधि, जैसे फर्राटा दौड़' में प्रदर्शन में मदद करते हैं, वहीं एनाबोलिक स्टीरॉइड्स "मांसपेशियों का वज़न बढ़ाते हैं और ऐसे खेलकूद में पुरुष एथलीट्स की मदद करते हैं जहां ताकत की ज़रूरत होती है, जैसे भारोत्तोलन या डिस्क थ्रो, जबकि स्त्रियों में ये उन खेलकूद में भी मदद करते हैं जिनमें सहनशक्ति की ज़रूरत होती है।"

डब्लू.ए.डी.ए. की प्रतिबंधित दवा सूची में कई दवाइयां ऐसी हैं, जिनका प्रदर्शन बेहतर करने में कोई योगदान नहीं होता, मगर इन्हें सिर्फ इसलिए शामिल किया गया है क्योंकि "एथलीट्स इनका उपयोग करते हैं या ऐसी अफवाह है कि वे इनका उपयोग करते हैं।" हालांकि किसी भी औषधि को मंज़ूरी मिलने से पहले क्लीनिकल परीक्षण ज़रूरी होते हैं, मगर एथलीट्स का प्रदर्शन बेहतर करने में किसी दवा की प्रभाविता का अध्ययन आसान नहीं है।

खेलकूद में उपयोग की जाने वाली एक बदनामशुदा दवा टेस्टोस्टेरोन है। यह पुरुषों में कुदरती रूप से पाया जाने वाला एंड्रोजेनिक एनाबोलिक स्टीरॉइड है। बेजिंग ओलंपिक से पहले एक निहायत पठनीय समीक्षा में बताया गया था कि टेस्टोस्टेरोन का सर्वप्रथम उपयोग 1954 की विश्व भारोत्तोलन स्पर्धा (विएना) में किया गया था। खेलकूद में प्रदर्शन को बेहतर बनाने में एंड्रोजेन्स का असर तथाकथित 'भूमिगत प्रेस' को काफी समय से पता था। इसमें एक पुस्तक का उल्लेख किया जाता है: *अंडरग्राउंड स्टीरॉइड हैण्डबुक*। यह एक ऐसा क्षेत्र है जहां "वैज्ञानिक साहित्य काफी पीछे है।"

काफी आधुनिक तकनीकों पर आधारित विश्लेषणात्मक रसायन शास्त्र खेलकूद में दवाइयों के दुरुपयोग के खिलाफ सबसे प्रमुख हथियार है। 1970 के मध्य दशक में प्रयुक्त रेडियो-इम्यूनोएसे का स्थान अब गैस/तरल क्रोमेटोग्राफी ने ले लिया है, और साथ में है मास स्पेक्ट्रोमेट्री। मगर दिक्कत किसी ऐसे पदार्थ की स्वीकार्य मात्रा तय करने में होती है जो वैसे भी शरीर में पाया जाता हो। अपनी उक्त समीक्षा में के.डी. फिच ने टेस्टोस्टेरोन का उदाहरण दिया है। वे बताते हैं कि 1980 के दशक में यह स्थापित किया गया था कि शरीर में टेस्टोस्टेरोन (T) और एक अन्य स्टीरॉइड (एपि-टेस्टोस्टेरोन E) का एक अनुपात होता है। इस T/E अनुपात के आधार पर यह बताया जा सकता है कि बाहर से टेस्टोस्टेरोन का सेवन किया गया है। 1965-1989 के दौरान स्टीरॉइड से डोपिंग करना जर्मन जनतांत्रिक गणतंत्र (पूर्वी जर्मनी) में लगभग एक राजकीय नीति थी। जर्मनी के एकीकरण के बाद जो प्रमाण सामने आए हैं, उनसे स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वी जर्मनी की डोपिंग प्रयोगशाला के प्रमुख के पास T/E अनुपात की अत्यंत बारीक समझ थी। जब एंड्रोजेन दुरुपयोग की जांच में T/E अनुपात प्रमुख विधि बनी, तो जर्मनी के डोपिंग प्रबंधकों ने प्रतिस्पर्धा से तत्काल पहले खिलाड़ियों को E खिलाना शुरू कर दिया ताकि अनुपात ठीक रहे। फिच बताते हैं कि पूर्वी जर्मनी में इस कार्यक्रम के प्रमुख "1981 से 1989 के दरम्यान अंतर्राष्ट्रीय ओलंपिक चिकित्सा समिति के सदस्य रहे थे।"

खेलकूद संस्थाओं में घपलों का इतिहास पुराना है। जैसा हथियारों की किसी भी होड़ में होता है, प्रतिबंधित दवाइयों के सेवन की शिनाख्त करने की तकनीकों का सामना करने के लिए शिनाख्त से बच निकलने के तरीके भी खोजे जाते हैं। 'भूमिगत रसायन शास्त्र' का ऐसा ही एक नवाचार है 'डिज़ाइनर दवाइयां'।

दुख की बात यह है कि एथलीट्स जिन पदार्थों का उपयोग करते हैं, उनमें से कई की प्रभाविता संदिग्ध है जबकि उनके स्वास्थ्य पर इनके दूरगामी प्रतिकूल असर स्पष्ट रूप से प्रमाणित किए गए हैं। डब्लू.ए.डी.ए. ने एथलीट्स के लिए एक 'जीव वैज्ञानिक पासपोर्ट'

व्यवस्था लागू की है। इसमें प्रावधान है कि नियमित रूप से खून के आठ मापदंडों की जांच की जाए ताकि शरीर क्रिया पर होने वाले नुकसानदेह प्रभावों को पहचाना जा सके, चाहे उस दवा का कोई निशान न मिले जिसका सेवन किया गया था। एक वैज्ञानिक शोध पत्रिका *नेचर रिव्यूस एंडोक्राइनॉलॉजी* के संपादकीय में कहा गया है कि "इन मापदंडों में विस्तार करके इनमें एंडोक्राइन क्रिया को शामिल किया जाए।" एंडोक्राइन क्रिया यानी हारमोन द्वारा नियंत्रित क्रियाएं। इसी संपादकीय में भावी घटनाक्रम को ध्यान में रखते हुए सुझाव दिया गया है कि "जीन डोपिंग की संभावना पर भी विचार किया जाना चाहिए।"

दवाइयों व अन्य पदार्थों के दुरुपयोग की किसी भी बातचीत में एक मत यह व्यक्त किया जाता है कि इसे कानूनी वैधता प्रदान करना ही इसका समाधान है। क्या खेलकूद में चिकित्सकीय देखरेख के तहत प्रदर्शन बढ़ाने वाली दवाइयों के उपयोग की अनुमति दी जाए? *स्पोर्ट्स मेडिसिन* नामक पत्रिका में यू. वाइज़िंग ने सावधानीपूर्वक विश्लेषण करके इसे अवांछनीय बताते हुए कहा है कि "इस सुझाव पर कदापि ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए।"

यदि कोई एथलीट डोपिंग परीक्षण में अस्वीकार बताया जाता है, तो उसका कैरियर तबाह हो जाता है। अब सवाल यह उठता है कि क्या 'डोपिंग शिनाख्त का विज्ञान' इतना सशक्त है कि उसमें गलतियों की संभावना नहीं है। क्योंकि गलती होने पर तो किसी निर्दोष एथलीट का कैरियर भी खत्म हो जाएगा। पिछले ओलंपिक से पहले *नेचर* पत्रिका ने फैसला दिया था कि "डोपिंग परीक्षणों को उन वैज्ञानिक सिद्धांतों और मानकों से छूट नहीं दी जानी चाहिए, जो अन्य जैव-चिकित्सकीय विज्ञानों पर लागू होते हैं, जैसे नैदानिक विज्ञान। यदि ऐसा नहीं किया जाता, तो संभव है कि निर्दोष को तो सज़ा मिलेगी और दोषी को संदेह के आधार पर छोड़ दिया जाएगा।"

यह संपादकीय इसलिए लिखा गया था क्योंकि 'डोपिंग के विज्ञान' पर *नेचर* में ही प्रकाशित डी.ए. बेरी द्वारा लिखित एक उत्तेजक टिप्पणी में कहा गया था कि "जिन प्रक्रियाओं के आधार पर एथलीट्स को दोषी ठहराया जाता है, वे प्रायः त्रुटिपूर्ण सांख्यिकी या त्रुटिपूर्ण तर्क पर आधारित होती हैं।"

रसायनों के परीक्षण में दो बातें निर्णायक महत्त्व रखती हैं - एक परीक्षण की संवेदनशीलता यानी क्या वह परीक्षण किसी पदार्थ की बहुत कम मात्रा को भी पकड़ सकता है, और दूसरी परीक्षण की विशिष्टता यानी क्या वह परीक्षण उसी पदार्थ के साथ सकारात्मक परिणाम देता है। चिकित्सकीय निदान में ये प्रमुख मुद्दे हैं क्योंकि वहां मिथ्या सकारात्मक और मिथ्या नकारात्मक दोनों तरह के परिणामों से बचने की ज़रूरत होती है। बेरी का तर्क था कि खेलकूद में दवाइयों का परीक्षण कदापि संतोषप्रद नहीं है। बेरी अपने तर्क के पक्ष में सायकिल चालक फ्लॉयड लैण्डिस का उदाहरण देते हैं जिस पर कृत्रिम टेस्टोस्टेरोन लेने का गलत आरोप लगा था। मगर इस तर्क के आलोचक कहते हैं कि डोपिंग का विज्ञान चिकित्सा विज्ञान नहीं है बल्कि अपराध विज्ञान है; इसमें रासायनिक विश्लेषण की व्याख्या के मापदंड अलग होंगे।

खेलकूद में दवाइयों के परीक्षण के क्षेत्र में दोषी-निर्दोष को प्रमाणित करना आसान काम नहीं है। रसायन शरीर और दिमाग दोनों पर असर डालते हैं। मसलन, एक रसायन शास्त्री डी. निकोलस ने बताया है कि उनके द्वारा मस्तिष्क को प्रभावित करने वाले पदार्थों पर अनुसंधान से ऐसी डिज़ाइनर दवाइयां बनाने में मदद मिलेगी जो आपको 'कानूनी तरंग' का मज़ा दे सकेंगी। और वास्तव में निकोलस द्वारा 1990 के दशक में एमटीए नामक पदार्थ पर किए अनुसंधान के आधार पर 'भूमिगत रसायन शास्त्रियों' ने इस पदार्थ का निर्माण भी कर लिया था, जिसके सेवन से कुछ मौतें भी हुई थीं। प्रयोगशाला रसायन शास्त्र में कभी यह उद्देश्य नहीं होता कि वहां बनाए गए रसायनों के हानिरहित होने की जांच की जाए। वैसे भी इन प्रयोगशालाओं में बनाए गए रसायन मानव उपभोग के लिए नहीं होते। मगर यह संभावना तो हमेशा बनी रहती है कि कोई 'उद्यमी' मुनाफे की उम्मीद में इसका कोई ऐसा उपयोग खोज निकालेगा जो खतरनाक हो। रसायन शास्त्र का भी अंधेरा पक्ष है। ***(स्रोत फीचर्स)***